पर्यावरण शिक्षा के सिद्धान्त
(Principles of Environmental Education)

शास्त्रीय विवेचन एवं प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर अध्ययन-अध्यापन सम्बन्धी कई सिद्धान्तों का विरूपण हुआ है। ये सामान्तया सभी विषयों के शिक्षण में सहायक होते हैं, परन्तु विषय-विशेष की प्रवृत्ति को देखते हुए कतिपय सिद्धान्त उस विषय-विशेष के शिक्षण की दृष्टि से अधिक उपयुक्त होते हैं। सिद्धान्तों की इस लम्बी श्रृंखला में से कतिपय ऐसे सिद्धान्त जो पर्यावरणीय अध्ययन विषय के शिक्षण में अधिक सहायक होते हैं, निम्नलिखित हैं—

1. मानसिक क्षितिज का विस्तार (Expansion of Mental Space)—व्यक्ति का सामाजिक जीवन माँ की गोद से प्रारम्भ होता है, जो धीरे-धीरे विकसित होकर परिवार, पास-पड़ोस, समाज, विद्यालय, नगर, राज्य, राष्ट्र यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व को भी अपने में समाहित कर लेता है। यदि उसे समाजिक जीवन के विकास के साथ-साथ उसके ज्ञान एवं मानसिक विशेषताओं, अभिरुचियों एवं सामाजिक दक्षताओं का विस्तार विकास अथवा स्थानान्तरण नहीं हो पाता है, तो उसके सामाजिक जीवन में असमायोजन उत्पन्न हो जाता है। यह स्थिति व्यक्ति एवं समाज दोनों की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। शिक्षण-व्यवस्था में इस हेतु कई विधाओं का उपयोग किया जा सका है। जिनमें से प्रमुख हैं—

(i) पाठ्यक्रम का समायोजन (Adjustment of Curriculum)—मानसिक क्षितिज के विस्तार के बिन्दु को ध्यान में रखना आवश्यक है। पाठ्यक्रम संयोजन के समय यदि विषय बिन्दुओं का चयन एवं संयोजन इस बिन्दु को ध्यान में रखते हुए किया जाए तो इस सिद्धान्त का परिपालन एवं उससे सम्बद्ध प्रयोजनों की उपलब्धि सरल हो जाती है।

(ii) समाज में प्रत्यक्षव सम्पर्क के अवसरों का उपयोग (Utility of Opportunities of Direct Contact in Society)—विद्यार्थियों के जीवन में इस प्रकार के अवसर सामान्यतया आते रहते हैं, जबकि वे वृद्ध समाज के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं। सामाजिक उत्सव, समाजसेवा-सम्बन्धी कार्य, सावर्जनिक जुलूस, भाषण, मेले, यात्राएँ तथा अन्य आयोजन आदि इसी श्रेणी में आने वाले कार्य हैं जो कक्षा के कमरों में नहीं सीखे जा सकते, अपितु प्रत्यक्ष सम्पर्क में सीखे जाते हैं।

(iii) परोक्ष सम्पर्क के साधनों का प्रयोग (Use of Source of Direct Contact)—समाज से सम्पर्क स्थापित करने के परोक्ष साधन भी है। रेडियो, समाचार, वार्त्ताएँ, दूरदर्शन कार्यक्रम, समाचार पत्र, चलचित्र, पुस्तकालय आदि ऐसे साधन हैं, जो समाज के साथ परोक्ष सम्पर्क स्थापित करने में सहायक होते हैं। यह परोक्ष सम्पर्क प्रत्यक्ष सम्पर्क की पूर्व सीढ़ी का काम देता है और प्रत्यक्ष सम्पर्क-सम्बन्धी जटिलता को सरल बना देता है। फलतः पर्यावरणीय अध्ययन के शिक्षक को इन साधनों का अपने शिक्षण में अधिकाधिक प्रयोग करते रहना चाहिए।

2. जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में रहने के अवसर प्रस्तुत करना (To Propose the Oppotunities to keep in Real Situation of Life)—पर्यावरणीय अध्ययन मात्र ज्ञान एवं जानकारी का सकलन नहीं बलिक समुचित सामाजिक भावनाओं, रुचियों एवं दक्षताओं का प्रशिक्षण इसके अध्ययन से मिलता है। ये गुण पुस्तक के पढ़ने अथवा सुनने मात्र से विकसित नहीं होता है। इसके लिए आवश्यक है विद्यार्थियों को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों को समझने तथा उनमें रहने का पर्याप्त अवसर मिले जहाँ तक सम्भव हो वास्तविक परिस्थितियों एवं जहाँ ऐसा न हो सके, वहाँ उनके अनुरूप परिस्थितियों का आयोजन करके उन्हें उनमें जीने का अवसर देना चाहिए। विद्यालय में छात्र सभाएँ, चुनाव, वाद-विवाद, समाज-सेवामण्डल, विद्यालय श्रमदल आदि का संगठन, वार्षिक उत्सव आयोजन, छात्रावास जीवन आदि में इसी प्रकार के सामाजिक जीवन सम्बन्धी अवसर मिलते हैं। फलतः इन्हें सौद्देश्य आयोजित किया जाना चाहिए।

Scanned by TapScanner

3. क्रिया द्वारा सीखना (To learn through Activity)—क्योंकि पर्यावरणीय अध्ययन में कई प्रकार के कौशल तथा दक्षताओं को सीखना होता है। दक्षताओं के विकास हेतु क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। केवल सुनने मात्र से या पढ़ने मात्र से उसका विकास असम्भव है। चित्र,रेखाचित्र, ग्राफ तथा मानचित्र आदि द्वारा किया गया अभ्यास ही विद्यार्थियों को लाभप्रद होता है। अधिकतम सिखाने हेतु इनके प्रयास किये जाने चाहिएँ।

4. शिक्षार्थियों की रुचि का सीधा प्रयोग (Direct use of Interest of Students)—रुचि के अनुरूप चयनित कार्य आसानी से कम समय में पूर्ण होता है, फलतः पर्यावरणीय अध्ययन विषय के छात्रों हेतु उनकी रुचियाँ ध्यान में रखनी चाहिएँ। इसका अर्थ यह है कि जिस आयु वर्ग में जो रुचियाँ सर्वाधिक हैं उन्हें शिक्षण में उपयुक्त स्थान दिया जाए। **उदाहरणार्थ**–जिस किसी आयु स्तर पर संकलन वृत्ति बालकों में अधिक होती है, इसका समुचित उपयोग करने के लिए इस स्तर के बालकों से विषय-वस्तु से सम्बद्ध विभिन्न वस्तुओं, चित्रों, खनिज पदार्थों के नमूनों, महापुरुषों के चित्रों आदि का संकलन कराया जाना समीचीन रहता है। ऐसा करने से एक साथ कई कार्य पूरे हो जाते हैं, जैसे शिक्षा, रुचि अथवा अभिवृत्ति का समुचित मार्गन्तरीकरण विद्यालय संग्रहालय की समृद्धि आदि।

5. शिक्षण सहायक सामग्री और प्रत्यक्ष वस्तुओं का अधिक प्रयोग (More use of present Objective and Teaching aids)—पर्यावरणीय अध्ययन से सम्बद्ध वस्तुओं का या सहायक सामग्री का प्रयोग कर शिक्षण करने से ज्ञान अनुभव या दर्शन के आधार पर ग्राह्य किया जाता है। अतः शिक्षक को अपने विषय-वस्तु के मौखिक कथन पर वस्तु-चित्र तथा अन्य आवश्यक शिक्षण सहायक सामग्री के प्रदर्शन के माध्यम से शिक्षण का प्रयास किया जाना चाहिए। विशेष रूप से प्राथमिक स्तर की कक्षाओं के लिए यह नितान्त आवश्यक है।

इस स्तर पर प्रत्यक्ष वस्तुओं अथवा उनके चित्रों या प्रतीकों के आधार पर जानकारी करायी जा सकती है। इसे निरन्तर व्यवहार में लाते रहने से शिक्षण में रोचकता एवं सजीवता बनी रहती है।

6. समसामयिक घटनाओं का उपयोग (Utility of Existing Events)—सामयिक या समसामयिक घटनाएँ भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों को ही समझने एवं भावी कार्य दिशा निर्धारित करने में सहायक होती हैं। समाज की नयी गतिविधियाँ भूत पर आधारित हैं और भविष्य की ओर इंगित करती हैं। कक्षा स्तरानुकूल संदर्भ उपयोग एवं सामाजिक घटनाओं का उपयोग अपेक्षित है।

7. समुदाय के साधनों का प्रयोग (Use of Resources of Community)—समुदाय एवं समान का अध्ययन तथा उसमें जीने की कला का प्रशिक्षण समाज एवं समुदाय में उपलब्ध साधनों और स्रोतों के रहते हुए किया जाना न तो उचित ही है और न समुचित रीति से सम्भव ही। अतः समाज एवं समुदाय में उपलब्ध साधनों का यथोचित प्रयोग सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में किया जाना चाहिए। इस हेतु शिक्षक शिक्षार्थियों को समाज के कतिपय संस्थानों; जैसे—डाकखाना, कारखाने, जलदाय विभाग आदि की प्रक्रियाओं का अवलोकन करा सकते हैं। अन्य परिस्थितियों; जैसे—गन्दी बस्तियों आदि का अध्ययन और सर्वेक्षण तथा समाज के निष्णात व्यक्तियों के भाषण अथवा वार्त्ताओं का आयोजन।

8. विद्यार्थियों के प्रयासों को अधिक प्रोत्साहन देना (To Encourage more and more attempts of Students)—पर्यावरण अध्ययन का मूल उद्देश्य व्यक्ति को समाज में सफल जीवन जीने की कला सिखाना है किन्तु व्यवहारिक जीवन में जीने की यह कला उस परिस्थिति में अधिक सफलतापूर्वक सीखी जा सकती है, जहाँ व्यक्ति को स्वयं कार्य का अनुभव प्राप्त हो। तात्पर्य यह है कि जो कार्य स्वयं द्वारा सोचा हुआ, समझा हुआ या खोजा हुआ होता है, उसमें व्यक्ति की दक्षता अधिक रहती है, ऐसी स्थिति में शिक्षक को चाहिए कि वह अपने शिक्षण में शिक्षार्थियों को अधिकाधिक क्रियाशील एवं कार्यरत रखने तथा यथासमय शिक्षार्थियों को स्वयं निर्णय लेकर कार्य करने का अवसर देता रहे। ऐसा करने से उनकी दक्षताएँ एवं मनोबल दृढ़ बनेगा।

Scanned by TapScanner

9. शिक्षण से सम्बद्ध कार्यक्रमों एवं प्रवृत्तियों के आयोजन में शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं एवं स्तर पर ध्यान देना (Standards of Students by organising of Insticts and Programmes related to Teaching)—शिक्षार्थियों की क्षमताएँ एवं उनका कार्यस्तर उनकी आयु तथा उनके मानसिक विकास पर निर्भर करता है किन्तु समान आयु के प्रत्येक बालक में समान क्षमताएँ हों और उनका कार्य-स्तर समान हो यह आवश्यक नहीं है। कारण यह है कि क्षमताओं एवं कार्य-स्तर के विकास को विद्यार्थी जीवन की वास्तविक परिस्थितियाँ नियन्त्रित करती हैं।

ऐसी स्थिति में एक कक्षा-स्तर पर एक ही पाठ्यक्रम के होते हुए भी शिक्षण कार्यक्रम और प्रवृत्तियों के चुनने में शिक्षार्थियों के कार्य-स्तर क्षमताओं एवं आवश्यताओं का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। ऐसा करने में विषय-वस्तु को समझने में तथा अनिवार्य प्रयोजनों की सम्पूर्ति तक पहुँचने में शिक्षार्थियों को कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है।

10. अन्य अध्ययनों विषयों के साथ समन्वय करना (To Correlate with other Subjects)—शिक्षा क्रम में निर्धारित अन्य विषयों से अलग रहकर मात्र अपने विषय की विषय-वस्तु तक ही सीमित रहना पर्यावरणीय अध्ययन के शिक्षक के लिए न तो सम्भव है और न ही उचित। ऐसी स्थिति में यथासम्भव अन्य विषयों के साथ इस विषय की विषय-वस्तु को समनवित करते हुए पढ़ाना अधिक अच्छा रहता है। छोटी कक्षाओं में प्राय: भाषा साहित्य उद्योग चित्रकला आदि विषयों के साथ सामाजिक अध्ययन की विषय-वस्तु का समन्वय भली प्रकार हो सकता है। इससे विषय का अध्ययन तो समृद्ध होता ही है साथ ही अन्य विषयों का ज्ञान भी पुष्ट होता है।

Scanned by TapScanner